दक्षिण कोसल के सामाजिक इतिहास में वर्ण–व्यवस्था की स्थिति

प्रवीन कुमार मिश्र

एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग
प्राचीन इतिहास विभाग
ने0 ग्रा0 भा0 विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

भारत के सामाजिक इतिहास में वर्ण व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है, जो सामाजिक विभाजन के रूप में वैदिक काल से आज तक उत्तर से दक्षिण तक निरन्तर प्रवाहमान है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत भारतीय समाज का वर्णों में विभाजन किया गया था। इसका प्रधान आधार रंग–भेद अथवा प्रजातीय धारणा ही थी। वैसे आर्यों ने इस विभाजन के अन्तर्गत यह व्यवस्था भी रखी थी कि कोई भी व्यक्ति कार्य पद्धति रूचि और मनःस्थिति के अनुसार वर्ण परिवर्तन कर सकता था, किन्तु ऐसी विकल्पना व्यवहार में विरल ही थी तथा उत्तर वैदिक काल के परवर्ती युग तक आते–आते वर्ण व्यवस्था का यह लचीलापन समाप्त हो गया था। उसमें कठोरता आ गई थी। यह सत्य है कि इसने समय–समय पर हिन्दू समाज की समस्त गतिविधियों को अपने विचारों और कार्यों से प्रभावित किया। फलतः देश में होने वाले अनेकानेक परिवर्तनों, संघर्षों तथा क्रान्तियों में इसकी क्रांतदर्शी भूमिका रही। कालान्तर में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि सभी अवस्थाओं का इसने अपनी वर्णगत व्यवस्था से किसी न किसी रूप में दिशा–निर्देशन किया। अपने भेद–परक प्रभाव और महत्व को एक–दूसरे वर्ण पर सिद्ध करने के लिए इस व्यवस्था के अन्तर्गत वर्णों के कायिक और वाचिक परस्पर मतभेद और संघर्ष भी होते रहे तथा प्रतिस्पर्धी–स्वरूप एक–दूसरे वर्ग के विरूद्ध निराधार तर्क भी प्रस्तुत किए जाते रहे, किन्तु इन भेद–भाव की प्रणालियों के बावजूद वर्ण–व्यवस्था की जड़ें कहीं से भी निर्बल नहीं पड़ीं, बल्कि परस्पर विचारों, निर्दिष्ट कार्यों और अधिकारों के संघर्ष से इस व्यवस्था की जड़ें और गहरी होती गईं, जो आज भी हिन्दू समाज में विद्यमान है।

प्राचीन छत्तीसगढ़ क्षेत्र के (दक्षिण कोसल) ई0पू0 द्वितीय शती से बारहवीं शताब्दी ई0 के मध्य के सामाजिक संरचना के अन्तर्गत समाज में वर्ण व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान था। यह क्षेत्र उत्तर एवं दक्षिण भारत के मध्य में स्थित होने के कारण यहां के सामाजिक संरचना में दोनों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। समय–समय पर देश के अन्य भागों से आये विभिन्न व्यवसाय या शिल्प से सम्बन्धित प्रवासी जातियों का समुदाय छत्तीसगढ़ की सामाजिक संरचना को प्रभावित करता रहा है। इसके साथ–साथ वन्य क्षेत्रों में निवास करने वाले लगभग सौ वन्य जातियों का भी छत्तीसगढ़ के सामाजिक आर्थिक संरचना तथा सामाजिक जीवन में विशिष्ट स्थान रहा है।[1]

Scanned with CamScanner

सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार श्रम विभाजन के आधार पर सम्पूर्ण समाज को चार वर्णों में बांटा गया है। ये चातुर्ष्य व्यवस्था ही भारतीय समाज की जीवन की आधारशिला मानी जाती थी।[2]

हमारे[3] प्राचीन हिन्दू चिंतकों के अनुसार प्रत्येक मनुष्य जन्म से प्रारम्भ होकर मनुष्य के मृत्यु के बाद तक चलते रहते हैं। ऋग्वेद कालीन वर्णधर्म का पालन तत्कालीन समाज में भी किया जाता था।

''गाथा सप्तशती''[4] प्राकृत महाकाव्य, जो कि प्रथम शताब्दी ए0डी0 से 8 शताब्दी ए0डी0 के बीच रखा गया था, सूचनाओं का महत्वपूर्ण श्रोत है। प्रत्येक समाज की भांति ही इस क्षेत्र के तत्कालीन समाज में वर्ण व्यवस्था तथा आश्रम व्यवस्था आर्यों के सामाजिक संगठन के दो पहिये थे, जो एक युग से दूसरे युग तक निरन्तर गतिमान थे। वर्णव्यवस्था परम्परागत सामाजिक संस्था थी, जहां समाज को सुसंगठित, सुदृढ़ एवं सुनियोजित बनाये रखने का प्रयास किया जाता था।

धर्मसूत्री[5] की शिक्षा दक्षिणी क्षेत्र के लोगों द्वारा अपने सामाजिक, धार्मिक, पारिवारिक, राजनैतिक, आर्थिक, नैतिक आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में अपना ली गयी थी। सूत्रों के अनुसार दक्षिण कोसल में दक्षिणपथ के अन्य भागों की तरह ही धर्म सूत्रों से निर्देशित पद्धति से ही जीवन–यापन करते थे।

दक्षिण कोसल 3 राज्यों में विभाजित था तब भी वर्ण व्यवस्था समाज में दृढ़ता से प्रतिष्ठित थी। दक्षिण कोसल में समाज चार वर्णों में विभाजित था, इस प्रकार से है।

1. ब्राह्मणः–

ऋग्वेद समाज में आर्य और अनार्य थे। उत्तर वैदिक काल में ब्राह्मण कहने वाले एक नये वर्ग का उदय हुआ, जिसका कार्य यज्ञिक उपासना अथवा कर्मकाण्ड का सम्पादन करना था।[6] इनका स्थान सर्वोपरि था, क्योंकि क्षेत्र में अधिक सुसंस्कृत, सुसम्पन्न माना जाता था। ब्राह्मणों को ''पंचमहायज्ञादि'' धार्मिक कार्य करने के लिए राजा की ओर से मंगल कार्य के प्रसंग में भूमिदान दिया जाता था।[7] मनु के अनुसार ब्राह्मणों के जीवन का आदर्श ही यह था निर्धनता एवं सादा जीवन संस्कृति का रक्षण एवं विकास करना उसे उतना ही धन रखने की आज्ञा थी, जितना वह अपने परिवार का भरण–पोषण कर सके।[8]

ब्राह्मणों की सामाजिक स्थिति समाज में गुणों के कारण ऊंची रही है। धीरे–धीरे गुण और कर्म के आधार पर उनकी अनेक शाखा एवं उपशाखा बन गई। उनका समाज में स्थान गुण के साथ–साथ वंश पर भी आधारित हो गया।[9]

प्राचीन ग्रंथों के अनुसार ''वैदिक काल में सप्त ऋषि (भृगु, अंगिरस, अत्री, विश्वामित्र, कश्यप, वशिष्ठ एवं अगस्त्य) थे, जिन्हे वैदिक कालीन ब्राह्मण अपने पूर्वज मानते थे।[10] इन सात ऋषियों के अन्तर्गत विभिन्न उपविभाग होते थे। जैसे भृगु के सात, अत्रि के चार, विश्वामित्र के दस, कश्यप के पांच, गौतम के दस, वशिष्ठ के पांच, अगस्त के चार, भारद्वाज के चार, अंगिरस के चार गोत्र का उल्लेख मिलता है। जो वेद के जिस शाखा का अध्ययन करता था वह उसी शाखा का कहा जाता था। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद के अनेक

Scanned with CamScanner

शाखाओं का उल्लेख है।[11] शरभपुरीय शासकों के ताम्रपत्रों में धारणी गोत्र (कुरूद ताम्रपत्र), पराशर गोत्र (ठकुरदिया ताम्रपत्र) कौडिन्य गोत्र (आरंग ताम्रपत्र) भारद्वाज गोत्र (मल्लार ताम्रपत्र) का उल्लेख है।[12] इसी प्रकार पाण्डुवंशीय शासकों के अभिलेखों में शाण्डिल्य गोत्र (मलगा ताम्रपत्र) भारद्वाज गोत्र (राजिम एवं बोडा ताम्रपत्रों) का उल्लेख मिलता है।[13]

इस समय ब्राह्मणों में द्रविड़, गौड़ जैसे भेद नहीं थे। इसी प्रकार मिश्र, अवस्थी, जैसे कुल नाम भी नहीं थे। केवल वेद, शाखा और गोत्र के आधार पर ही भेद माना जाता था।[14] इसी प्रकार रतनपुर के कलचुरि शासकों के अभिलेखों में वत्स गोत्र (डकोनी ताम्रपत्र) चन्द्रात्रेय गोत्र (अमोदा ताम्रपत्र) सावर्ण एवं भारद्वाज गोत्र (अमोदा ताम्रपत्र) वत्स गोत्र (सरखों ताम्रपत्र) था उल्लेख मिलता है।[15] गोत्र के साथ शाखा भी प्रमुख था। शरभपुरीय शासकों के वाजसनेय शाखा (ठाकुरदिया ताम्रपत्र), मध्यन्दिन शाखा (आरंग ताम्रपत्र) का उल्लेख है।[16] सोमवंशी शासकों के ताम्रपत्रों में गौतम शाखा (पटना ताम्रपत्र) मैत्रायिणी शाखा (महाकोशल इतिहास परिषद ताम्रपत्र) अद्धवी शाखा (कुण्डोपाली ताम्रपत्र), कण्व शाखा (पटना संग्रहालय ताम्रपत्र) का उल्लेख मिलता है।[17]

कलचुरि शासकों के अभिलेखों[18] में कुछ परिवर्तन दिखाई पड़ता है। गोत्र के साथ–साथ प्रवर का भी उल्लेख हुआ है। कुछ स्थानों पर प्रवरों की संख्या–1, 2, 3, 5 का उल्लेख मिलता है।

सोमवंशी शासकों के पश्चात (छत्तीसगढ़) क्षेत्र में शासन करने वाले कलचुरि शासकों के अभिलेखों में भी प्रवर का उल्लेख मिलता है।[19] जैसे उतिथ्य, गौतम, वशिष्ठ, प्रवर (अमोदा ताम्रपत्र) आदि। इस क्षेत्र के अभिलेखों में दान ग्रहण करने वाले ब्राह्मणों के नाम के साथ विभिन्न उपनाम तथा उनके मूल स्थान का भी उल्लेख मिलता है। जैसे शरभपुरियों के अभिलेखों में नाम के साथ अंत में अधिकांशतः स्वामी मिलते हैं। जैसे (विष्णु स्वामी एवं भाश्रुत स्वामी)[20] पाण्डुवंशीय शासकों के अभिलेखों में नाम के आगे भट्ट और बाद में स्वामी लगाते थे। जैसे (भट्ट त्रिविकम स्वामी)[21] सोमवंशी शासकों के अधिकांश ताम्रपत्रों में नाम के आगे भट्टपुत्र लिखा जाता था जैसे (भट्टपुत्र दामोदर)[22] कुछ अभिलेखों में नाम के आगे भट्ट (भट्ट जी महोदधी)[23] लिखा जाता था। कुछ ब्राह्मणों के साथ उनके मूल स्थान को प्रदर्शित करने वाले ''माथुर'' ''नागर'' जैसे विशेषण जुड़े थे। इसी भांति बाद में ब्राह्मणों की उपजातियों का प्रादुर्भाव हुआ।[24] इनके नाम के आगे पण्डित, ठाकुर, गैन्ता आदि शब्द तथा नाम के अन्त में प्रायः ''शर्मा'' शब्द आया है। मिश्र, त्रिपाठी आदि उपनाम 15–16वीं शताब्दी के लेखों में मिलते हैं।[25] शैवाचार्य और शंकभरीविद्या में पारंगत ब्राह्मणों के नामों का भी उल्लेख मिलता है।[26]

ब्राह्मणों के मूल स्थानों का उल्लेख नहीं मिलता है, किन्तु सोमवंशी और कलचुरि शासकों के अभिलेखों में दान ग्रहण करने वाले ब्राह्मणों के मूल स्थान का उल्लेख मिलता है। जैसे सोमवंशीय शासकों के अभिलेखों में श्रावस्ती, मण्डल, भटपरोली, मध्य प्रदेश, तिरहुत, भुक्ति, टाकारी, कौशल देश आदि स्थानों का भी उल्लेख मिलता है।[27]

Scanned with CamScanner

कलचुरि शासकों के अभिलेखों में कुलांचा, टकारी, कुभ्भटी, हस्तियामठि का उल्लेख है।[28]

छत्तीसगढ़ से प्राप्त अभिलेखों में विभिन्न अवसरों जैसे एकादशी, पूर्णिमा, श्रावण, कार्तिक, मकर संक्रान्ति, सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण आदि पर ब्राह्मणों को दिये गये दान का विवरण है।[29] धर्मशास्त्रों के अनुसार दान दी गई भूमि या पूंजी पर किसी प्रकार का कर लगाना वर्जित था।[30]

अभिलेखों से ज्ञात होता है कि ये ग्राम सभी प्रकार के करों से मुक्त थे तथा शासकीय अधिकारियों का प्रवेश निषिद्ध होता था। लगभग सभी दानपात्रों में ''चाट–भाट'' प्रावेश्यस्य र्प्वकरविसिर्ज्जित'' शब्द का उल्लेख मिलता है। पृथ्वीदेव द्वितीय के कोनी शिलालेख में सर्वोधिकारी पुरूषोत्तम को दान में दिये गये एक ग्राम का उल्लेख है, जिनमें पृथ्वीदेव द्वितीय ने एक मंदिर निर्माण की पूजा–अर्चना हेतु एक विद्वान ब्राह्मण को नियुक्त किया था।[31]

समाज के बुद्धजीवी वर्ग के प्रतिनिधि एवं आध्यात्मिक गुरू होने के नाते ज्ञान एवं कला के अनेक क्षेत्रों की जानकारी ब्राह्मणों को होना अनिवार्य थी।[32] इनमें से अनेक वेदों (पुरावैद्रिक, ज्ञान, अख्यक, ब्राह्मण, उपनिषद) वेदांगों[33], दर्शनशास्त्र की पद्धतियों (सांख्योग, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा, वेदान्त)[34] इसके साथ ही साथ अभिलेखों से ज्ञात होता है कि शैव, पाशुपत एवं शाक्त तथा बौद्ध मत के अनुयायी ब्राह्मणों का उल्लेख मिलता है[35], जो न्याय, दर्शन, वेदान्त शैव, शाक्त सिद्धान्तों के ज्ञाता थे। जाजल्लदेव प्रथम के धार्मिक गुरू रूद्रशिव, बौद्ध दर्शन, डिडनागा आदि अनेक सिद्धान्तों को जानते थे। जाजल्लदेव के मल्लार शिलालेख में सोमराज हवन पूजन का बड़ा सुरम्य वर्णन मिलता है।[36] नारायण शर्मा का उल्लेख शिवरीनारायण में रतनदेव द्वितीय के ताम्रपत्र में उद्गात्री अर्थात पुरोहित के कार्य में अत्यन्त निपुण इस भांति किया गया है।[37]

कलचुरि कालीन प्रलेखों में लिखा है कि ब्राह्मणों को स्वप्न में भी अपमान नहीं करना चाहिए। दान देकर, मान देकर, अर्चना करके लोगों को (इसी जन्म में) पाप एवं पुण्य का निपटारा किया जा सकता है।[38] ब्राह्मण राजा के मंत्रिमण्डल में पुरोहित भी होते थे। संकट के समय राजा को सलाह एवं सहायता भी करते थे। भाकमिश्र, सोमेश्वर, पुरूषोत्तम, गंगाधर आदि ब्राह्मण मंत्रियों के कार्य कौशल का उल्लेख कलचुरियों के अभिलेखों में है। रणभूमि में शौर्य प्रदर्शन के साथ–साथ बुद्धि एवं कुशलता से आर्थिक संकट को दूर किया। कई ब्राह्मणों ने राज प्रशस्तियां भी लिखी थी, जिससे उसके कवि होने का प्रमाण मिलता है।[39]

वर्तमान काल में इस क्षेत्र में ब्राह्मणों की निम्न उपजातियां मिलती हैं, जिन्हे उनके मूल स्थान के नाम से जाना है। सरयूपारी, कान्यकुब्ज, मालवीय, नामदेव, मडलीहा, महापात्र, गुर्जर एवं द्राविडियन आदि हैं।[40]

इस प्रकार ब्राह्मणों का दक्षिण कोसल में विशिष्ट स्थान था।

2. क्षत्रियः

Scanned with CamScanner

सामाजिक वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत दूसरा स्थान क्षत्रियों का आता है। इन्हे समाजरूपी पुरूष का बाहु माना गया है। इन्हे राजस्व भी कहा जाता है, जिसका तात्पर्य राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा अन्य सभी प्रकार के सुरक्षा प्रदान करना दक्षिण कोसल के शासक एवं उनके सम्बन्धी क्षत्रिय ही थे, जिनके अथक प्रयास से दक्षिण कोसल का क्षेत्र समृद्धशाली एवं सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुआ।

ईसा की चौथी शताब्दी के लगभग क्षत्रिय जाति के अनेक शाखा एवं उपशाखा बन गई थी। वे अपना उद्भव सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि अथवा किसी पौराणिक पुरूष से मानते थे। विभिन्न अभिलेखों से ज्ञात होता है कि चौथी शताब्दी ईसवी से बारहवीं शताब्दी ईसवी के मध्य शासन करने वाले विभिन्न राजवंश के शासक भी क्षत्रिय थे। शरभपुरीय वंशों के शासकों के अधिकांश अभिलेखों में वंश का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है, किन्तु व्याघ्रराज के मल्लार ताम्रपत्र में वंश का नाम आमरार्यकुल कहा गया,[41] जिसकी पुष्टि उसके समकालीन पाण्डुवंशीय शासक भरतबल के ब्राह्मणी ताम्रपत्र से होती है। इसके पश्चात शासन करने वाले पाण्डुवंशीय शासकों के अभिलेखों में इनके वंश का नाम पाण्डु, चन्द्र तथा सोमवंश मिलता है। सोमवंशीय शासक अपना उद्भव सोम अथवा चन्द्र से मानते हैं, किन्तु ये त्रिकालिंगाधिपति की उपाधि धारण करते थे। इसी कारण इन्हे त्रिकालिंगाधिपति कहा जाता है।[42]

कलचुरि नरेशों के ताम्रपत्रों में कलचुरि नरेश अपने को कार्त वीर्य सहस्त्रार्जुन का वंशज मानते थे। इसके साथ ही अपने को चन्द्रवंशी मानते थे।[43] ये अपने को हैहयवंशी भी कहते थे। स्मृतियों, नीतिशास्त्रों में क्षत्रियों के लक्षण बताये गये हैं। जैसे– जनता की रक्षा, उदारता, त्याग की भावना, राज्य की रक्षा करना, सांसारिक सुखों का त्याग आदि। वेदों में घोषित है कि ब्राह्मणों ने क्षत्रियों की मदद से ही ईश्वर, पितर तथा मनुष्यों पर पकड़ बनायी। ये वाक्य गौतम धर्मसूत्र में स्पष्ट रूप से है।[44]

क्षत्रिय वर्ग में ही एक नई जाति का उदय हुआ, जिसे राजपूत कहा जाता था। स्मृतिकारों ने इन्हे क्षत्रिय कहा है, किन्तु अनेक अभिलेखों[45] में उन्हे राजपूत कहा गया है। राजपूत शब्द का अर्थ है राजा का पुत्र। इससे स्पष्ट होता है कि राजपूत लोग देश में प्रचलित शासन व्यवस्था सम्बन्धित थे। प्राचीन साहित्यों में क्षेत्र के साथ–साथ राजन्य शब्द भी क्षत्रियों के लिए प्रयुक्त होता था।[46]

राजिम से प्राप्त शिलालेख में उत्कीर्ण है कि सामंत जगपालदेव प्रतिदिन नियमित रूप से पुराण, अगम, महाभारत, रामायण आदि ध्यान से सुनता था तथा स्वाध्याय भी करता था।[47] खरोद[48] से प्राप्त शिलालेखों से स्पष्ट है कि क्षत्रिय कुमार पाल एक वरिष्ठ कवि थे, जो साहित्य एवं राजनीति में ज्ञान रखते थे। कोर्न से प्राप्त शिलालेख द्वारा ज्ञात होता है कि रतनदेव द्वितीय समस्त छत्तीस शास्त्रों की विद्या में निपुण था।[49] राज्य के महत्वपूर्ण पदों पर उनकी नियुक्ति हुआ करती थी।[50] शासन सूत्र के संचालन में क्षत्रियों की बुद्धि और शक्ति का प्रयोग होता था। क्षत्रिय राजा प्रजा से विविध प्रकार के कर लेते थे और क्षत्रिय सैनिक या राजपुरूष राजा के वेतनभोगी होते थे।[51] स्मृतिकारों ने इनका स्थान ब्राह्मणों के बाद रखा

Scanned with CamScanner

है, किन्तु बौद्ध और जैन साहित्य में ब्राह्मणों से अधिक महत्व क्षत्रियों को दिया है।[52] राजाओं के साथ प्रशासनिक व्यवस्था में भी क्षत्रिय सामंत संलग्न थे। इस प्रकार का उल्लेख अभिलेखों में मिलता है। छत्तीसगढ़ (दक्षिण कोसल) के क्षत्रिय नाम दानवीर कुशल प्रशासन विद्या में निपुण थे। परवर्ती काल में देश के विभिन्न प्रान्तों से क्षत्रियों का कई समूह छत्तीसगढ़ में आकर बस गये। इनके विभिन्न उपभेद मिलते हैं। जैसे कनौजिया (कन्नौज से आने वाले) डेहरिया एवं दहरिया (डाहल मण्डल में आने वाले) हैहयवंशी (कलचुरि के वंशज) आदि। इन सभी समूहों में निम्न उप जाति भेद भी मिलते हैं जैसे– बुन्देला, सोमवंशी, सूर्यवंशी, अग्निवंशी, यदुवंशी आदि।[53]

इस प्रकार वर्तमान छत्तीसगढ़ में क्षत्रियों एवं अन्य जातियों का समान रूप से अधिकार और महत्व है। वर्तमान समय में इनकी जनसंख्या इस क्षेत्र में तीन प्रतिशत के लगभग माना जाता है।

3. वैश्यः–

वर्णव्यवस्था की तीसरी संरचना वैश्य को माना गया है। वैश्य लोग प्रारम्भ से ही भारतीय समाज के मेरूदण्ड माने गये हैं। कलचुरियों के शासन से पूर्व दक्षिण कोसल के आर्य समाज के वैश्यों से सम्बन्धित साक्ष्य न मिलने के कारण कुछ कहना कठिन है। चातुर्वर्ण्य में वैश्य को विशेष स्थान प्राप्त था। इस जाति के कई पुरूषों ने रण स्थल में भी अपना पराक्रम दिखाया था।[54]

वैश्य शब्द ऋग्वेद में पुरूष सूक्त को छोड़कर अन्यत्र नहीं मिलता है।[55] विश का उल्लेख अवश्य स्थान–स्थान पर हुआ है,[56] जो युद्ध में भाग नहीं लेते थे वे एक विनीत स्थिति के अधिकारी होते थे। उन्हे विश कहा जाता था।[57]

धर्मशास्त्रों एवं स्मृतिकारों में वैश्यों का कर्तव्य, अध्ययन, भजन, दान, कृषि, वाणिज्य एवं पशुपालन बताया गया है और आवश्यकता पड़ने पर प्रशासन तथा सैनिक वृत्ति भी वैश्य ग्रहण कर समाज की रक्षा कर सकता है।[58] इसके अलावा वैश्य ब्राह्मण और क्षत्रियों की सेवा कार्य भी बताया है।[59] अभिलेखों में तीन वैश्य परिवारों के उल्लेख मिलते हैं। ये कलचुरि राजाओं के विशेष सेवा किया करते थे तथा राजदरबार में अपना विशेष स्थान रखते थे। अमोदा से प्राप्त पृथ्वीदेव प्रथम के ताम्रपत्र[60] और रतनपुर से प्राप्त शिलालेख[61] श्रेष्ठी यश का उल्लेख मिलता है। यह रतनपुर प्रधान के पद पर आसीन था। प्रधान के कार्य ''ग्रामधिपति'' के समकक्ष होने के प्रमाण मिलते हैं। श्रेष्ठी यश के सहयोग से ही रत्नराज प्रथम ने रतनपुर शहर को रमणीक एवं गौरवशाली बनाया।

धर्मशास्त्रों, स्मृतिकारों में वैश्यों का कर्तव्य अध्ययन, यजन, दान, कृषि, वाणिज्य एवं पशुपालन बताया है। आवश्यकता पड़ने पर प्रशासन तथा सैनिक वृत्ति भी वैश्य ग्रहण कर समाज की रक्षा कर सकता है।[62] शरभपुरीय तथा कलचुरियों के द्वारा जारी किए गये स्वर्ण, रजत तथा ताम्र सिक्के तथा इसके साथ–साथ कुछ अभिलेखों, व्यापारिक वस्तुओं में लगने वाले कर शुल्क[63] तथा बिक्री कर[64] का उल्लेख मिलता है। इससे ऐसा लगता है कि वैश्यों की स्थिति अच्छी थी।

Scanned with CamScanner

साधारण तौर पर वैश्यों को वेदाध्ययन का तथा दर्शन शास्त्राध्ययन का अधिकार न था, अलबरूनी ने इसी बात की पुष्टि की है कि वैश्यों एवं शूद्रों को वेदों के पठन, पाठन एवं श्रवण का अधिकार न था। अलकतरा से प्राप्त शिलालेख स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि राघव बल्लभराज[65] श्रेष्ठी रल्हन आदि अनेक वैश्य शिक्षा के विविध क्षेत्रों में अग्रणी थे, यथा राघव–कलावन वान बल्लभराज बहुविधविद्या[66] परिचय श्रेष्ठी रल्हन संस्तुना बुद्धिना आदि।[67] कई ताम्रपत्रों के उत्कीर्णक का नाम के साथ विज्ञानी शब्द का उल्लेख मिलता है। कटक ताम्रपत्र[68] में उत्कीर्णक का नाम माधव (विज्ञानी) मिलता है। कलचुरि शासकों के अभिलेखों में शिल्पी या शिल्पकार शब्द का उल्लेख मिलता है। वैश्यों के अनेक उपभेद भी हैं, स्वर्णकार, बनिया, ताम्रकार आदि। छत्तीसगढ़ में वैश्यों की संख्या लगभग दो प्रतिशत थी।[69]

4. कायस्थः–

पूर्वमध्यकालीन समाज में नयी जाति का अभ्युदय हुआ, जो कायस्थ जाति के नाम से विख्यात हैं। राजपूतों की भांति पौराणिक है, परन्तु इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। इसकी उत्पत्ति ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा शूद्र वर्ण से बताई जाती है। कलचुरि कर्ण के रीवा शिलालेख[70] में शिव से उत्पन्न ऋषि काचर ने प्रसन्न होकर अपने एक शूद्र दास को एक विख्यात धार्मिक पुत्र होने का वरदान दिया, जिसकी जाति कायस्थ नाम से जानी जायेगी, क्योंकि उसकी कथा से (शरीर) असंख्य गुणों से युक्त कूटनीतिक व्यक्ति उत्पन्न होंगे। कायस्थों के चेदिमण्डल में दक्षिण कोसल की ओर परावर्जन के अनेक उदाहरण मिलते हैं। कायस्थों को समाज में सम्मान प्राप्त था। कलचुरियों के राज्य में अनेक विद्वान कायस्थ रहते थे। कायस्थ हिसाब–किताब भी रखते थे और कारकूनी किया करते थे। कई लेखों में इन्हे ''करणिक'' भी कहा गया है।[71]

कलचुरि काल में इनकी स्थिति अच्छी थी। विभिन्न स्थानों से विद्वान कायस्थ यहां आये और स्थाई रूप से बस गये।

5. शूद्रः–

प्राचीन भारतीय सामाजिक संरचना में चातुवर्ण में चौथा और अंतिम वर्ण शूद्र को माना गया।[72] इसके भी प्रत्यक्ष उल्लेख दक्षिण कोसल समाज के सन्दर्भ में नहीं मिलते। दक्षिण कोसल में शूद्रों की वही स्थिति रही होगी, जैसे देश के अन्य भागों में शूद्रों की स्थिति थी।[73]

शूद्र शब्द की उत्पत्ति का प्रथम प्रयास वादरायण के वेदांतसूत्र में मिलता है। पुराणों में शूद्र शब्द का मूल शुच माना गया है तथा यह कहा जाता है कि जो शोकाकुल होकर इधर–उधर दौड़ता है, निर्बल और निस्तेज है।[74] शूद्रों की स्थिति का ज्ञान साहित्यिक साक्ष्यों में अनार्य कहा गया है। प्रमाणों से इसी बात का पता चलता है कि जिन दासों से आर्यों का संघर्ष हुआ। उनकी प्रबल शाखा का नाम शूद्र था। सभी वर्गों की सेवा करना इनका प्रथम कर्तव्य था। इस वर्ग को समाज में सृष्टिरूपी पुरूष का पैर माना गया है। यही कारण था

Scanned with CamScanner

कि कार्यों पर आधारित नवीन जातियों का जन्म हो गया था। जैसे– केवट, मल्लाह, बढ़ई जाति की उत्पत्ति हुयी। इसी प्रकार तेल बनाने का काम करते वाला तेली जाति के थे।

शराब बनाने वाले को कालार जाति आदि अनेक जातियां बन गईं। कलचुरि नरेशों के अनेक अभिलेखों में रूपकारों एवं शिल्पियों के उल्लेख मिलते हैं। ये अपने यांत्रिक कला में पारंगत थे। यथा– भासला[75] सम्पुला[76] चिटुका[77] आदि।

कुछ वर्गों के शूद्रों का अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ, शौर्य, प्रशासन एवं व्यापार, वाणिज्य से पृथक था, केवल इनका कार्य सेवा में आसक्त रहें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वियोगी, पं0 मदन लाल– जातक कालीन भारतीय संस्कृति, पृ0 132
2. मिश्रा बलदेव प्रसाद, छत्तीसगढ़ परिचय, पृ0 104
3. हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र– पी0पी0काणे भाग–2, ''जन्मना जायते शूद्रा, पृ0 420 संस्कारात् द्विज उक्यते।''
4. सिद्ध भारती भाग–2, पृ0 177–181
5. इण्डिया आफ वैदिक कल्पसूत्राज, पृ0 94–98, 100
6. रसेल, आर0ही0 एवं हीरालाल, दी ट्राइव्स एंड कारस्टस आफ दी सेन्ट्रल प्राविंसेज आफ इण्डिया भाग–1, 11, पृ0 3–537
7. प्यारे लाल गुप्त– प्राचीन छत्तीसगढ़ सन् 1973, पृ0 309
8. काणे, पी0वी0 धर्मशास्त्रों का इतिहास, प्रथम भाग, पृ0 143–48
9. मनुस्मृति, 4–12
10. राव, विजय बहादुर, उत्तर वैदिक कालीन समाज एवं संस्कृति, पृ0 82–86
11. सेरिंग– एम0ए0, हिन्दू ट्राइव एण्ड कास्ट, 6–8
12. एपि0 इ0 भाग 19, 28, पृ0 102, 12
13. राजगुरू, एस0 एन0 पूर्वोद्धत, भाग–4, पृ0– 1–94
14. शांता शुक्ला– छत्तीसगढ़ का सामाजिक, आर्थिक इतिहास (शोध प्रबंध), रवि वि0वि0 रायपुर सन् 1982 ई0, पृ0 15
15. कां0 इं0इ0 भाग–4, खण्ड–2, पृ0– 398–575
16. एपि0 इ0 भाग–22, पृ0 15–231, भाग–23, पृ0– 18–20, भाग–34, 27–30
17. राजगुरू, एस0 एन0 पूर्वोद्धत, भाग–4, पृ0– 94–275
18. मिराशी, वा0वि0 का0ई0इं0, इं0, भाग–4, खण्ड–2, पृ0–398–626
19. पूर्वोद्धत
20. एपि0 इ0 भाग–31, 4 पृ0 70–75
21. राजगुरू, एस0 एन0 पूर्वोद्धत, भाग–4, पृ0–81–85
22. ओ0हि0रि0जं0–भाग–12, पृ0 20
23. ज0एशि0सी0बं0भाग
24. रमेन्द्रनाथ मिश्र, शांता शुक्ला छत्तीसगढ़ का इतिहास सन् 1990, पृ0 30
25. प्यारे लाल गुप्त– छत्तीसगढ़ का इतिहास, सन् 1973, पृ0 203
26. कां0 इं0इ0 भाग–4, खण्ड–2, पृ0–409–417, 458–62

Scanned with CamScanner

27. राजगुरू, एस0 एन0 पूर्वोद्धत, भाग–4, पृ0–94–265
28. कां0 इं0इ0 भाग–4, खण्ड–2, पृ0–409–417, 458–62
29. राजगुरू, एस0 एन0 पूर्वोद्धत, भाग–2 एवं 4, पृ0–85–120, 1–300, जैन बी0सी0 पूर्वोद्धत, पृ0 06–150
30. सी0आई0आई0भाग–4, पृ0 469–470
31. डा0 तिवारी पुष्पा, कलचुरि युगीन समाज एवं संस्कृति 2007, लोकहित प्रकाशन, दिल्ली पृ0 94
32. सी0आई0आई0भाग–4, पृ0 83–86
33. वही, पृ0 82
34. वही, पृ0 83
35. मिराशी, वा0वि0 कलचुरि नरेश एवं उनके काल, पृ0 59–61
36. सी0आई0आई0भाग–4, पृ0 83–86
37. वही, पृ0 82
38. वही, पृ0 83
39. मिराशी, वा0वि0 का0ई0इं0, इं0, भाग–4, खण्ड–2, पृ0–375–599
40. रसेल, आर0ही0 एवं हीरालाल पूर्वोद्धत, भाग–2, पृ0–351–400
41. एपि0 इ0 भाग–21, पृ0 153–57
42. राजगुरू, एस0 एन0 पूर्वोद्धत, भाग–4, पृ0– 8–17
43. कां0 इं0इ0 भाग–4, खण्ड–2, पृ0–398–652
44. गौतम धर्मसूत्र भाग–11, पृ0 29
45. राय, सिद्धेश्वरी नारायण, पौराणिक धर्म एवं समाज, पृ0 168
46. उपाध्याय राम जी, प्राचीन भारत की सामाजिक संस्कृति पृ0 49
47. सी0आई0आई0भाग–4, पृ0 524
48. ई0आई भाग–21, पृ0 165
49. सी0आई0आई0भाग–4, पृ0 467
50. रमेन्द्रनाथ मिश्र, शांता शुक्ला छत्तीसगढ़ का इतिहास सन् 1990, पृ0 31
51. मिश्र, प्रभास चन्द्र पालि निकायों में प्राचीन भारत की सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाएं– पृ0 118–126
52. पाण्डेय राजबली हिन्दू संस्कार, पृ0 103
53. रसेल एवं हीरालाल, पूर्वोद्धत, भाग–2, पृ0–410–470
54. प्यारे लाल गुप्त– छत्तीसगढ़ का इतिहास, सन् 1973, पृ0 203
55. पाठक, सर्वानन्द, विष्णु पुराण का भारत, पृ0 90
56. राव, विजय बहादुर, उत्तर वैदिक कालीन समाज एवं संस्कृति, पृ0–103–4
57. दुबे, राजदेव, स्मृति कालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, पृ0 20
58. मनुस्मृति 8, 10
59. विष्णु स्मृति 5, 6
60. ई0आई भाग–19, पृ0–75
61. वही, भाग–1, पृ0 33
62. मनुस्मृति 8, 10

Scanned with CamScanner

63. महाजन, मालती, पूर्वोद्धत, पृ0 197
64. मिराशी, वा0वि0 कलचुरि नरेश एवं उनके काल, पृ0– 66–67
65. अलबरूनीज इण्डिया भाग–1, पृ0 125
66. सी0आई0आई0भाग–4, पृ0 430–436
67. ई0आई भाग–21, पृ0–165
68. ओ0हि0रि0जं0–भाग–1, पृ0 192–7
69. परिहार, दिनेश नन्दिनी, प्राचीन, छत्तीसगढ़ का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन 2003, पृ0 111
70. कां0 इं0इ0 भाग–4, खण्ड–1, पृ0–295
71. प्यारे लाल गुप्त– छत्तीसगढ़ का इतिहास, सन् 1973, पृ0 203
72. काणे, पी0वी0 धर्मशास्त्रों का इतिहास, प्रथम भाग, पृ0 109
73. डा0 तिवारी पुष्पा, कलचुरि युगीन समाज एवं संस्कृति 2007, लोकहित प्रकाशन, दिल्ली पृ0 98
74. पाण्डेय मिथिलाशरण, प्राचीन भारत की सामाजिक संस्थाएं, पृ0 21
75. ई0आई भाग–19, पृ0–75
76. सी0आई0आई0भाग–4, पृ0 524
77. वही पृ0 524

Scanned with CamScanner